लौहित्य साहित्य सेतु: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित अर्धवार्षिक द्विभाषिक ई-पत्रिका
वर्ष: 2 संख्या: 2 ; जनवरी-जून, 2021

डॉ॰ अमूल्य चन्द्र बर्मण का साक्षात्कार

साक्षात्कार-ग्रहण : संजीव मंडल

साक्षात्कार में डॉ॰ अमूल्य चन्द्र बर्मण सर से निम्नलिखित प्रश्न पूछने का सुअवसर मिला। आगे उनसे पूछे गए प्रश्न और उनसे प्राप्त उत्तर दिए जा रहे हैं।

प्रश्न 1. आपके शिक्षागुरुओं में से किसने आपको सर्वाधिक प्रभावित किया है और कैसे ?

उत्तर : शिक्षकों की महिमा अपार है। इसीलिए हमारी संस्कृति में गुरु को सर्वोपरि माना जाता है। कहा जाता है - "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वर:। गुरु: साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवै नम: ।" गुरु-कृपा से वंचित विद्यार्थी अपनी मंजिल तक पहुँच नहीं सकता । इसलिए गुरु की सेवा-पूजा की परम्परा हमारी संस्कृति में है। कहा जाता है - "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्"।

मेरे जीवन में मुझे एक नहीं कई गुरुओं का आशीर्वाद मिला, उनकी कृपा प्राप्त हुई। उन गुरुओं को मैं अपना पथ-प्रदर्शक गुरु मानता हूँ। विद्यालय में पढ़ते वक्त मुझे स्वर्गीय वसंत कुमार भट्टाचार्य महोदय ने प्रेरित एवं प्रभावित किया था। वे विद्यालय के हिंदी विषय के शिक्षक थे । विद्यालय में पढ़ते समय पारिवारिक कारण से मुझे आठवीं श्रेणी में नये विद्यालय में दाखिला लेना पड़ा था। विद्यालय घर के पास ही था, पर नया था । इसीलिए उन्होंने मुझे नलबाड़ी देवीराम हाईस्कूल में दाखिला लेने का परामर्श दिया था। विद्यालय में पढ़ते समय उन्होंने मुझे काफी प्रभावित किया। करीब 30/35 साल तक उनके साथ मेरा गुरु-शिष्य का सम्बन्ध रहा। उनकी आत्मा को शान्ति मिले, ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है।

दूसरे गुरु के रूप में मुझे श्रद्धेय अध्यापक रमेश चन्द्र डेका मिले, जिन्होंने मेरे विद्यार्थी-जीवन को अनुशासित-नियमित किया था । उन्होंने प्राक् विश्वविद्यालय कक्षा में हिंदी पाठ पढ़ाया था एवं दूसरे अध्यापकों से पढ़वाया था। नलबाड़ी कॉलेज में, जहाँ मैं पढ़ता था, हिंदी विषय नहीं था, अत: उनके साथ रहकर प्राक् विश्वविद्याल्य के पाठ गुवाहाटी में पढ़ता था। मेरी अंक-तालिका और प्रमाण-पत्र में कॉलेज के नाम के स्थान पर 'प्राइवेट' यानी 'P' लिखा हुआ है । डेका महोदय के साथ रहकर मैं स्नातक हिंदी प्रथम तथा दूसरे वर्षों का पाठ्यक्रम पढ़ता था। वहाँ पहली बार गुरुदेव डॉ॰ नन्द किशोर सिंह महोदय से मुलाकात हुई थी। श्रेणी में उनकी प्रस्तुति के साथ ही उनके व्यक्तित्व ने प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में मुझे प्रभावित किया था । अब उनकी सेवा-निवृत्ति तथा स्वदेश लौटने के बाद भी वे मेरे पथ-प्रदर्शक का काम कर रहे हैं। वास्तव में, वे मेरे साथ-साथ पूर्वोत्तर में हिंदी के विद्यार्थियों के, खासकर हिंदी मेजर के विद्यार्थियों के गुरु तो हैं ही, साथ ही गुरुओं के गुरु भी हैं।

चौथे पड़ाव में स्नातकोत्तर कक्षा में हिंदी विभाग (गौहाटी विश्वविद्यालय) के माननीय अध्यापक डॉ॰ हीरालाल तिवारी जी से प्राप्त उनकी दया, कृपा तथा अनुकम्पा के लिए मैं हमेशा उनका आभारी हूँ। लगता है कि मैं उनका प्रिय विद्यार्थी था। 20वीं सदी के आठवें दशक में शोध-कार्य करना यहाँ, खासकर हिंदी में, आसान नहीं था, क्योंकि हिंदी के क्षेत्र में यहाँ मुट्ठी-भर गाइड थे और हमारे जैसे सेवारत अध्यापकों का उनसे मिलना सम्भव नहीं था। ऐसी परिस्थिति में भी ईश्वर ने डॉ॰ हीरालाल तिवारी महोदय को मेरे शोध-कार्य के गुरु के रूप में सामने भेजा। उन्होंने मुझे प्रतिष्ठित किया, सीख दी, ज्ञान दिया, मेरा पथ-प्रदर्शन किया, पुस्तकें देकर मदद की, स्नेह दिया, प्यार दिया। उनकी सेवा-निवृत्ति के पश्चात् एक बार बनारस, दूसरी बार गाजियाबाद जाकर मैंने उनके प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित किए थे। विदाई के अवसरों पर, दोनों ही बार मैं उनके पाँव पकड़कर बहुत देर तक रोता रहा। आज भी उनका व्यक्तित्व मुझे प्रेरित-प्रभावित करता है।

प्रश्न 2. आपकी उच्च-शिक्षा के समय असम का शैक्षिक माहौल कैसा था ?

उत्तर : सन् 1972-76 के दौरान मेरी उच्च-शिक्षा समाप्त हुई और सन् 1989 में शोधकार्य का परिणाम घोषित हुआ। उस समय समाज में गरीबी थी। स्कूल, कॉलेज तथा विश्वविद्यालय की संख्या आज की तरह नहीं थी। रोटी, कपड़ा और मकान की समस्याएँ लोगों की प्रमुख समस्याएँ थीं। विद्यार्थियों को दूर-दूर तक स्कूल के लिए जाना पड़ता था; लड़कियों को साधारणत: पढ़ने नहीं दिया जाता था। पुस्तक खरीदने के लिए पैसे नहीं थे; पुरानी पुस्तकें हमें पढ़नी पड़ती थी। हिंदी पुस्तकों का अभाव गुवाहाटी के साथ दूसरे नगरों के विद्यार्थियों को भी मुश्किल में डालता था। मूल पाठ्यपुस्तक बाजार में नहीं होती थी। उसके विपरीत, एकमात्र 'असम हिंदी प्रकाशन' नोट-बूक लाकर बेचता था क्योंकि मूल किताब के स्थान पर नोट-बूक में कॉमिशन अधिक मिलता था। श्रेणी में जो पढ़ाया जाता है, पूरी मात्रा में समझ में नहीं आता था। हिंदी मेजर की पढ़ाई सिर्फ प्रागज्योतिष कॉलेज में होती थी। स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं में हमारे साथ विभिन्न प्रान्तों (राजस्थान, पंजाब, हरियाना, बिहार, यू.पी, उड़िसा, मणिपुर) तथा देश (नेपाल) के विद्यार्थी थे। उनके साथ रहकर विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी बोलने-सीखने का हमें मौका मिला था। कॉलेजों में हिंदी पढ़ाने हेतु अध्यापक नहीं मिलते थे। साल-भर में एक ही बार परीक्षा होती थी और पाठ्यक्रम भी एक साल के लिए बनाया गया था। आज की तरह कहीं भी संगोष्ठी, सम्मेलन, वाद-विवाद जैसी दूसरी प्रतियोगिताएँ नहीं होती थीं; कड़ाई के साथ कक्षा की उपस्थिति देखी नहीं जाती थी। परीक्षा की कॉपियाँ दूर-दूर के विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को जाँचने दी जाती थीं, ताकि अंक देते समय भाई-भतीजावाद के प्रभाव से मुक्त होकर अंक दिए जा सके।

प्रश्न 3. अपने शोध-कार्य के लिए आपने नाटक विधा को ही क्यों चुना था ?

उत्तर : मैं विद्यालय में पढ़ते वक्त विभिन्न अवसरों पर नाटकों में अभिनय करता था। दसवीं कक्षा में मैं पुरस्कृत भी हुआ था। दूसरी बात है, हमारे समय यानी

1970 के पहले यात्रा-पार्टियों (भ्राम्यमान थिएटर उनका विकसित रूप है) की भीड़ थी और हम मनोरंजन तथा ज्ञान के लिए ऐसी पार्टियों के नाटकों के अभिनय नजदीक से देखते थे । इस प्रकार की पार्टियों की एक खासियत यह है कि वह खुले मंच पर अभिनय करती थीं । हिंदी के शोधार्थियों ने नाटक के विविध विषयों पर शोध-कार्य किया था, कुछ शोधार्थी कर रहे थे । पौराणिक नाटक, ऐतिहासिक नाटक तथा सामाजिक नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन लोग अधिक पसंद करते थे । इसलिए मैंने गाइड महोदय के परामर्श से प्रभावित होकर "स्वातंत्र्योत्तर हिंदी और असमीया नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन," (सन् 1980 तक) शीर्षक विषय चुना था ।

प्रश्न 4: शिक्षक का सबसे बड़ा प्रमाणपत्र उसके विद्यार्थी होते हैं। विद्यार्थी सफल हैं तो शिक्षक को सफल माना जाता है। आपके सुदीर्घ अध्यापन के समय बहुत सारे विद्यार्थों के जीवन आपने गढ़े हैं। आपके सैकड़ों विद्यार्थी प्रतिष्ठित हो चुके हैं। वे आपके प्रति पूरी श्रद्धा और भक्ति रखते हैं। हमने देखा कि विद्यार्थियों से जैसा सम्मान आपको मिला है, वैसा सौभाग्य बहुतों का नहीं होता।

उत्तर: सही कहा। हमारी सफलता का मानदंड हमारे विद्यार्थी होते हैं। मुझसे विद्यार्थियों को क्या मिला , वह मैं नहीं जानता। पर इतना अवश्य है कि उन्हें कुछ न कुछ देते रहने का प्रयास मैंने किया और यह सिलसिला आज भी जारी है। गौहाटी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष डॉ. अच्युत शर्मा, वर्तमान की विभागाध्यक्ष डॉ. रीतामणि वैश्य, बी.एच. कॉलेज, हाउली के अध्यक्ष डॉ. भूषण पाठक,कॉटन विश्वविद्यालय की सहायक अध्यापक बिद्या दास, गौहाटी विश्वविद्यालय की सहायक अध्यापक पूजा शर्मा, नगाँव कॉलेज की सहायक अध्यापक पूजा बरुवा, दुमदुमा कॉलेज की हिन्दी विभागाध्यक्ष हिरण वैश्य,मरिगाँव कॉलेज के सहायक अध्यापक युगल नाथ, कानै कॉलेज, डिब्रुगढ़ की भूतपूर्व विभागाध्यक्ष कल्पना बरुवा, डिमरीया कॉलेज की सहायक अध्यापक शेवाली कलिता आदि मेरे विद्यार्थी रहे हैं। मुनमी गायन, रागिनी मल्लिक आदि भी कॉलेजों में हिन्दी के अध्यापन का काम कर रही हैं। इनके अलावा भी अन्य क्षेत्रों में भी कई विद्यार्थी प्रतिष्ठित हैं।

प्रश्न 5: आप शोध निर्देशक भी रहे हैं। शोध निर्देशक के रूप में अपना अनुभव बताएं।

उत्तर: हाँ, मैं गौहाटी विश्वविद्यालय का शोध निर्देशक रहा हूँ। कॉटन जब विश्वविद्यालय बना था, तब हम रिटायर होनेवाले थे। शोध का काम शुरू होते-होते हम रिटायर हो चुके थे। अतः कॉटन में शोध निर्देशन का काम करने का अवसर मुझे नहीं मिला। गौहाटी विश्वविद्यालय में मैंने कुल चार शोधार्थियों का निर्देशन किया। मेरी पहली शोधरथी हैं छाया भट्टाचार्य। छाया जी कॉटन कॉलेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष रही हैं। उन्होंने जैनेन्द्र कुमार और भवेन्द्रनाथ शइकीया के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन पर अच्छा काम

किया है। रीतामणि वैश्य ने भी अच्छा काम किया। उनका विषय था – नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित समस्याओं समीक्षात्मक अध्ययन। सरकारी हिन्दी शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय, उत्तर गुवाहाटी की प्रवक्ता पल्लवी गोस्वामी जी मेरी तीसरी शोधार्थी हैं। मृदुस्मिता देवी जी ने भी मेरे निर्देशन में गौहाटी विश्वविद्यालय से शोध का काम सम्पन्न किया है।

प्रश्न 6 : कॉटन कॉलेज , जो अब कॉटन विश्वविद्यालय बना, असम के विद्यार्थियों का सपनों का शिक्षानुष्ठान है। कॉटन के हिन्दी विभाग में आपने काफी समय काम किया है। उस समय के माहौल के बारे में थोड़ा बयाइए।

उत्तर: कॉटन में मैंने जीवन का बहुत समय बिताया है। आज भी जब भी मौका मिलता है, मैं उससे जुड़ता हूँ। कॉटन में एक बौद्धिक माहौल हमें मिला था। अध्यापक धर्मदेव तिवारी,अध्यापक भूपेन्द्रनाथ रायचौधुरी, डॉ. अजित दास, डॉ. छाया भट्टाचार्य, डॉ. भूषण पाठक मेरे सहकर्मी रहे हैं। उस समय हमारा विभाग एक विभाग होने के साथ-साथ एक परिवार हुआ करता था, वह हमारा दूसरा घर हुआ करता था। बहुत सारी साहित्यिक गतिविधियां भी होती थीं। साहित्यिक कार्यक्रमों में शिक्षकों के साथ विद्यार्थी भी सक्रिय रूप से शामिल होते थे।

प्रश्न 7. हिंदी साहित्य के कौन-से लेखक आपको प्रिय हैं और क्यों ?

उत्तर : कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है । अर्थात् साहित्य में समाज प्रतिबिम्बित होता है। समाज और साहित्य का अटूट सम्बन्ध है । हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के उपन्यास-सम्राट के रूप में प्रसिद्ध प्रेमचंद के साहित्य में तत्कालीन समाज की वास्तविकता देखी जा सकती है । कहा जाता है, प्रेमचंद का साहित्य अपने समय का इतिहास है । उन्होंने लगभग एक दर्जन उपन्यास तथा लगभग 250 कहानियों के माध्यम से अपने उद्देश्य को रेखांकित किया है, जहाँ समाज के विभिन्न स्तरों के लोगों की जीवन-गाथाओं, उनकी समस्याओं, आचारों-विचारों, दशाओं, शोषण-अत्याचार, लोक-विश्वासों, नारी-जीवन के संघर्षों आदि को शैली-शिल्प की परिपक्वता एवं सामाजिक यथार्थता के साथ अभिव्यक्त किया गया है । आँखों-देखी और भोगी हुई समस्याओं के चित्रण में निहित उनकी व्यंजना मुझे बेहद आकर्षित करती है । प्रेमचंद मुझे प्रिय इसलिए हैं कि उनके साहित्य में यथार्थ की कटुता के साथ आदर्श और आदर्शोन्मुखी यथार्थ की झाँकियाँ भी मिलती हैं । अधिकतर संदर्भों में उन्होंने कथाओं की जमीनी हक़ीक़त को पाठकों के सामने रखकर पाठकों को परिस्थितियों की गहराई को समझने एवं सोचने पर मजबूर किया है ।

प्रश्न 8. आपने हिन्दी की बहुत सेवा की है । इसमें आपका लेखन-कर्म भी महत्वपूर्ण है । 'विद्यापति के काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन' शीर्षक पुस्तक में विद्यापति पर आपके विशद ज्ञान की झलक मिलती है। इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा और पुस्तक लिखते

समय की कठिनाइयों के सम्बन्ध में आपकी राय क्या है?

उत्तर : स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं में वर्षों तक विद्यापति की कविताएँ, जो मुझे बेहद प्रिय हैं, पढ़ाता था। कविवर विद्यापति बिहार प्रांत के मिथिलांचल की भाषा मैथिली के प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय कवि रहे हैं, जिनकी लोकप्रियता असम, बंगाल, उड़िसा और उत्तर प्रदेश के साथ-साथ नेपाल में भी है। उनकी काव्य-शैली की विशेषताएँ, यथा - विषय-संबंधित कृष्ण, शिव, काली, दुर्गा, गंगा आदि की भक्ति की एकात्मकता, देवी-देवताओं की महानता, भक्तवत्सलता, भक्त की लघुता एवं शृंगारिकता के साथ भक्ति की व्यंजना तथा शैली-शिल्प संबंधित - भाषिक सुबोधता, भावानुकूल भाषा, सरलता तथा गेयता - उनकी कविताओं में एक साथ लक्षित की जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त मेरे विभाग के दो वरेण्य अध्यापक डॉ॰ धर्मदेव तिवारी जी तथा डॉ॰ अजीत दास से मैं प्रेरित था।

पहले बताया जा चुका है कि उस समय पूर्वोत्तर में हिंदी पुस्तकें उतनी उपलब्ध नहीं थीं। यही कारण है कि यहाँ नोट-बूक अधिक चलती हैं, जिससे अध्ययन कर किसी बात को स्पष्ट रूप में पेश करना असम्भव होता है। मुश्किल से विद्यापति पदावली की मूल प्रतिलिपियाँ, जिन पर भरोसा किया जा सकता है, मेरे हाथ लगी थीं। इन्हीं मूल कॉपियों ने, जहाँ प्राय: एक हजार पद उपलब्ध हैं, मेरे इस अध्ययन को सुगम बनाया था।

प्रश्न 9. हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों के लिए रोजगार के कौन-कौन से पथ खुले हैं ? इस विषय पर कुछ बताइए।

उत्तर : मैं समझता हूँ कि हिंदी के विद्यार्थी अपनी पसंद के आधार पर (हिंदी) पढ़ रहे हैं। अत: उन्हें समर्पित भाव से पढ़ाई पर ध्यान देना चाहिए। हर रोज हिंदी से संबंधित चुनौतियों का सामना करना चाहिए। प्रतियोगिता का भाव मन में रखकर आगे बढ़ना चाहिए। बिना लक्ष्य निर्धारित किए आगे बढ़ना उचित नहीं। अपने को समाज में प्रतिष्ठित करना आसान काम नहीं है।

हिंदी के विद्यार्थी के लिए रोजगार के कई पथ प्रशस्त हैं। उच्चशिक्षा-उन्मुख विद्यार्थी के लिए कॉलेज, वि.वि. के अध्यापकों के पद खाली होते हैं। उनके लिए विद्यार्थी को एम.फिल., पीएच.डी., नेट, स्लेट, कम्प्यूटर का ज्ञान तथा शुद्ध हिंदी लिखने-बोलने की कला आदि के साथ ही राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होनेवाली संगोष्ठी आदि में हिस्सा लेने के प्रमाण-पत्रों की आवश्यकता है। इतना ही नहीं, इसके लिए स्तरीय निजी प्रकाशन भी योग्यता के क्षेत्र में मदद करता है। सेकेंद्ररी कक्षा के हिंदी शिक्षक का पद भी उनके लिए है।

स्नातकोत्तर डिग्री के पश्चात विद्यार्थी अगर बी.एड. अथवा एम.एड. की डिग्री हासिल कर लेता है और वह शुद्ध हिंदी लिखने-बोलने की क्षमता रखता है तो वह हिंदुस्तान के किसी भी बी.एड. कॉलेज के अध्यापक के पद के लिए योग्य समझा जाता है। सरकारी और निजी, राज्य सरकार तथा केंद्र सरकार के अधीनस्थ लाखों ऐसे स्कूल हैं जहाँ हिंदी-शिक्षकों की

जरूरत है । इसके लिए भी हिंदी लिखने-बोलने की कला की जरूरत है। हिंदी के विद्यार्थी के लिए रोजगार का अन्य एक पथ है हिंदी अधिकारी तथा हिंदी अनुवादक का पद । राज्य तथा केंद्र सरकारों के निजी विभागों के साथ उनके अधीनस्थ विविध निकायों, निगमों, कम्पनियों तथा बैंकों के विविध अनुवाद पत्राचार, आलेखन, टिप्पण आदि कार्यों के लिए उनमें एक-एक हिंदी विभाग खुले हुए हैं । इनके लिए योग्य व्यक्ति की आवश्यकता पड़ती है और विविध प्रचार-माध्यमों द्वारा उनका विज्ञापन छपाया जाता है। हिन्दी के वे विद्यार्थी जो साधारणत: अंग्रेजी माध्यम लेकर आए हैं अथवा अंगेजी पर जिनकी दखल है, आसानी से एक अनुवादक की डिप्लोमा-परीक्षा की डिग्री लेकर अनुवादक एवं हिंदी अधिकारी के पद हेतु चयनित हो सकते हैं। वे अपने यथोचित प्रयास द्वारा ऐसे लोभनीय पद पर बैठ सकते हैं।

प्रश्न 10. आपके विचार से भारत की नई शिक्षा-नीति कितनी कारगर हो सकती है ?

उत्तर : नीति-निर्धारण करना यानी नीति बनाना जितना जोखिम भरा और कठिन काम है उससे अधिक जोखिम भरा और कठिन काम है उसका क्रियान्वयन करना । इन दोनों क्षेत्रों में अनुभवी और क्रियाशील व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

दूसरी बात है, हमारे भारतवर्ष में लगभग 135 करोड़ लोग हैं, जो विभिन्न वर्गों, स्तरों, श्रेणियों, धर्मों, जातियों, भाषाओं, प्रदेशों के हैं। इन तमाम लोगों तक नीतियों का लाभ पहुँचाना असम्भव तो नहीं है, कठिन अवश्य है । विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस युग में सरकार अगर समर्थन और आर्थिक मदद यथोचित रूप में करती है, देखरेख करती है, समय-समय पर मूल्यांकन कर यथोचित दिशा-निर्देश देती है तो कार्यान्वयन में कठिनाई नहीं होगी। उसके लिए शिक्षा से जुड़े स्कूलों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों के विभिन्न अध्यापकों को कमोबेश रूप में तालीम देने की आवश्यकता अनुभूत होती है।

मैं समझता हूँ कि इच्छा, ज्ञान और क्रिया का समन्वय अगर होता है तो कोई काम अधूरा और असफल नहीं रहता है।

प्रश्न 11. आपने भारत के आपातकाल के समय को अच्छी तरह से देखा है। आपातकाल लागू होने के वक्त असम का राजनीतिक माहौल कैसा था ?

उत्तर : भारत का आपातकाल हमारे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक क्षेत्रों के लिए एक अभिशाप था । विरोधी दलों के साथ संघीय कार्यकर्त्ताओं को जेल की हवा खानी पड़ती थी। लॉ और आर्डर के नाम पर पुलिस और प्रशासन के लोगों को असाधारण क्षमता मिल चुकी थी। व्यक्ति तथा वाक्-स्वाधीनता का हनन हो चुका था। इस काल के दौरान लोग संत्रस्त थे, विरोधी कुछ लोग देश से भाग गये थे, कुछ लोग आत्मगोपन करते थे। हिंदी के कुछ अध्यापक, जो संघ से जुड़े हुए थे, डरे हुए थे, संत्रस्त थे, दिन के समय घर से बाहर नहीं निकलते थे; क्योंकि किसी भी समय पुलिस और प्रशासन के लोग वारंट लेकर आ जाते थे। प्रमुखत: मीडिया के नाम पर प्रिंट और एलेक्ट्रोनिक का बोलबाला था । टीवी, सोशल मीडिया, इंटरनेट आदि तब नहीं थे। सारी ख़बरें सरकारी एजेंसियों द्वारा

नियंत्रित होती थीं । अख़बारों का प्रचार नगरों तक सीमित था। हम आकाशवाणी द्वारा प्रचारित-प्रसारित तथा नियंत्रित ख़बर दूसरों के घर पर जाकर सुनते थे। वास्तव में, उस समय 'धड़-पकड़' का माहौल था और इसीलिए पढ़ने-पढ़ाने का कोई अच्छा माहौल नहीं था। आज कोरोना (कोविड-19) के कारण चिकित्सालय की जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं, लगभग वैसी परिस्थितियाँ जेल की थीं।

प्रश्न 12. आपके जीवन का सबसे अच्छा और सबसे बुरा साल कौन-से हैं ?

उत्तर : मैं भाग्यवादी नहीं था और न ही हूँ । मैं परिस्थिति और हाथ के साथ बुद्धि पर विश्वास और भरोसा करता हूँ। मैं कभी भी ज्योतिषी के दरबार तक नहीं गया।

सन् 1976 के अंत में स्नातकोत्तर हिंदी की परीक्षा का परिणाम घोषित हुआ था और उसमें मुझे प्रथम श्रेणी में दूसरा स्थान मिला । प्रथम स्थान प्राप्त हुआ था किसी दुबे या चौबे नामक एक प्राइवेट विद्यार्थी को, जिसको हमारी कक्षा का कोई नहीं पहचानता था।

सन् 1977 का समय मेरे लिए संघर्ष का समय था । स्कूल-कॉलेजों की श्रेणियों पर आपातकाल का प्रभाव पड़ा था । सरकारी तथा निजी स्कूल-कॉलेज दोनों शिक्षण-संस्थानों में हिंदी विषय उस समय अनादृत था।

पहली बार एक विज्ञापन के आधार पर मैं लामडिंङ कॉलेज में साक्षात्कार देने गया था; मुझे बुलाया गया था। उस दिन कॉलेज में अध्यक्ष महोदय थे, दूसरे-तीसरे अध्यापक भी मौजूद थे। मैं समय पर पहुँच गया था। कई घण्टों के पश्चात् अध्यक्ष महोदय ने मुझसे कहा कि साक्षात्कार नहीं होगा क्योंकि दूसरा कोई प्रत्याशी या विद्यार्थी नहीं आया है । मैं निराश हृदय लेकर लौटा था।

दूसरी बार बी.एन. कॉलेज में हिंदी अध्यापक के लिए दिए गये विज्ञापन के आधार पर साक्षात्कार देने हेतु मैं धुबरी गया था; मुझे साक्षात्कार हेतु आमंत्रित भी किया गया था । मैं यथासमय उपस्थित हुआ । साक्षात्कार हुआ । बाद में मालूम पड़ा कि वहाँ एक स्नातकोत्तर डिग्रीहीन प्रत्याशी को चयनित किया गया है, जो अध्यक्ष महोदय से संबंधित था।

तीसरी बार असम के सरकारी कॉलेजों के रिक्त लगभग साठ-सत्तर विभिन्न विभागों के पदों का विज्ञापन लोक-सेवा आयोग, असम द्वारा विभिन्न प्रतिष्ठित दैनिक समाचार-पत्रों के साथ राजपत्र में प्रकाशित हुआ था । विज्ञापन बहु-प्रचारित थे । तदनुसार हजारों की संख्या में आवेदन-पत्र आये थे और बहुत ही जल्द सारे विभागों के साक्षात्कार क्रमानुसार हुए थे। हिंदी विषय का भी हुआ था, कई विद्यार्थी आए थे, जिनमें कई मेरे सहपाठी भी थे । सुना था कि मेरा नाम तालिका के प्रथम स्थान में था और दूसरे में बिपिन कलिता का । लोगों को नियुक्ति-पत्र मिले और यथाशीघ्र वे जाइन करने लगे । मैं जब पता करने हेतु सचिवालय गया तब अध्यक्ष महोदय ने मुझसे कहा कि हिंदी के किसी विद्यार्थी ने शिकायत की कि उन्हें विज्ञापन की कॉपी नहीं मिली थी, इसीलिए यह नियुक्ति जायज नहीं है । यह शिकायत उस समय के शिक्षा-मंत्री हितेश्वर शइकीया महोदय के सामने की

गई थी । उन्होंने लोक-सेवा आयोग से फाइल में यह पूछा था कि हिंदी का विज्ञापन जायज है या नहीं, यह जानते हुए भी कि तब तक नियुक्ति-प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी और अन्य विषयों के ढेर सारे पदों की नियुक्तियाँ हो चुकी थीं । लगभग सन् 1977 के अंत में फाइल वापस आयी, जिसमें लोक-सेवा आयोग की ओर से कहा गया था कि विज्ञापन जायज था ।

सन् 1978 का साल मेरे लिए शुभ है । वह इसीलिए कि उस वर्ष के प्रारम्भ में यानी जनवरी महीने के भीतर फाइल का काम पूरा हो चुका था, नियुक्ति-पत्र तैयार था, मुझे किसी के माध्यम से फरवरी के प्रथम सप्ताह के भीतर सचिवालय आने की सूचना दी गई थी । मैं अध्यापक रमेश चंद्र डेका महोदय को साथ ले गया था । मेरे हाथ में नियुक्ति-पत्र देकर अध्यक्ष, शिक्षा विभाग, असम सरकार, चक्रवर्ती ने कहा था, सॉरी अनावश्यक आपको परेशान करना पड़ा । मैंने उनसे एक प्याला चाय लेने का आग्रह किया; लेकिन उन्होंने अस्वीकार किया ।

उसी दिन कॉटन कॉलेज जाकर मैंने जाइन किया था । अत: सन् 1978 का समय मेरे लिए अच्छा था ।

प्रश्न 13: उपलब्धियों से पूर्ण आपके जीवन में ऐसा कौन-सा काम है, जो आप अब तक नहीं कर पाए हैं?

उत्तर : मैं कदापि महत्वाकांक्षी नहीं था और न ही हूँ; सहज-सरल जीवन व्यतीत करना मेरा लक्ष्य है । प्रसाद जी ने 'चंद्रगुप्त मौर्य' में एक बात कही है - "महत्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है।" बात सर्वथा सही है । मैं निष्ठुर नहीं बना । एक संयुक्त-परिवार में बढ़ा-पला हूँ । इसीलिए परिवार के सभी सदस्यों पर ध्यान देना पड़ता है । अत: हमेशा संतुलित बनकर रहना चाहता हूँ । सेवा-निवृत्ति के पश्चात एक पुस्तक लिखने की सोची थी, विषय था - 'गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की समीक्षा दृष्टि'। जीवन की व्यावहारिक आपाधापी के चलते समय की कमी होती रही । अत: काम धीमी गति से बढ़ता गया । सन् 2021 के भीतर इस कार्य को समाप्त करने का प्रयास करूँगा ।

संजीव: सर आपने मुझे बहुत समय दिया। आपके साथ हुये इस साक्षात्कार से आपके जीवन की बहुत सारी बातें हम जान पाये। आपका बहुत बहुत आभार। आगे भी आप इसी ऊर्जा से काम करते रहें, यही कामना है।

सर: तुम्हें भी धन्यवाद ।

संपर्क-सूत्र :
डॉ॰ अमूल्य चन्द्र बर्मण
ई-मेइल : barmanamulyachandra@gmail.com
संजीव मंडल
हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय
ई-मेइल : 666sanjibmandal@gmail.com